

कहानी : ज़िंदगी के टेढ़े-मेढ़े रास्ते

शाम के छह बज रहे होंगे। स्वाति अपने कमरे में बेचैनी से चहलकदमी कर रही थी। उसके पति तरुण अभी तक ऑफिस से वापस नहीं लौटे थे। बच्चे बाहर खेलने निकल गए थे। आज ऑफिस में स्वाति की भेंट एक ऐसे शख्स से हुई थी, जिसने उसके दिल में उथल-पुथल मचा दी थी।

वैभव...। हाँ, वही था वो...। बीस साल के लंबे अरसे बाद दोनों की मुलाकात हुई थी। स्वाति की शादी को अठारह साल हो चुके थे। उसका बेटा हर्ष पंद्रह वर्ष का और बेटी निधि बारह वर्ष की हो चुकी थी।

वैभव का चेहरा, उसकी आँखें, उसकी शालीनता और बात करने का तरीका — सब कुछ स्वाति के दिलोदिमाग से उतर ही नहीं रहा था। वह जितना ध्यान हटाने की कोशिश करती, उतना ही वैभव की ओर खिंचती चली जाती। हारकर उसने एक पत्रिका उठाई, पर पढ़ने की कोशिश भी बेकार ही साबित हुई — हर तस्वीर में उसे वैभव ही दिखाई देने लगा।

उसने पत्रिका एक ओर रख दी। निकाली, जिसे उसने आज तक डायरी थी, जिस पर लिखा था — नहीं था। उसे किसी और चीज़ की से संभालकर रखे गए थे। उसी में वैभव ने लिखा था।

प्रिय स्वाति जी,

मैं एक ऐसे सफर पर जा रहा हूँ, मैंने आपके साथ चलने और वफ़ा बार नाकाम रहा। मेरी मजबूरियाँ ही



अलमारी खोली और एक पोटली किसी से छिपाकर रखा था। उसमें एक “जानू”। वह डायरी अभी पढ़ने का वक्त तलाश थी। बहुत सारे कागज़ सलीके से उसे एक अंतर्देशीय पत्र मिला, जो

जिसकी मंज़िल मुझे खुद नहीं मालूम। निभाने की बहुत कोशिश की, पर हर बार हमें दूर ले जाती रहीं। चाहता

तो बहुत था कि ताउम्र आपके साथ रहूँ, पर एक बार फिर मुझे आपसे दूर जाना पड़ रहा है।

पिताजी के जाने के बाद पूरे घर की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर आ गई है। बहन भी अब विवाह योग्य हो चली है। मैं जानता हूँ कि मैंने आपको धोखा दिया है। आपने जो सपने देखे, मैं उन्हें पूरा नहीं कर पाया। मुझे बेवफ़ा कहें, धोखेबाज़ कहें, ग़लत नहीं होगा। पर एक बात जान लीजिए — मैं आपको दिल से कभी दूर नहीं कर सका। क्या हुआ जो हम मिल न सके? क्या हुआ जो परिस्थितियों ने हमें जुदा कर दिया? क्या शादी जैसे बंधन ही मिलन का प्रमाण होते हैं? क्या सिर्फ़ देह का मिलन ही प्रेम है? कल शाम, एक आखिरी बार, उस मंदिर के पीछे मिलने आना... जहाँ हम पहले मिला करते थे। शायद यह हमारी आखिरी मुलाकात हो।

आपका जो न हो सका, वैभव।

स्वाति को आज भी वो शाम याद है। वह दोपहर से ही मंदिर पहुँच गई थी, पर वैभव नहीं आया। अगले दिन जब वह वैभव के घर पहुँची, तो वहाँ ताला लटका था। पूरा परिवार कहीं चला गया था। आस-पड़ोस से भी कोई जानकारी नहीं मिली।

बीस साल बाद आज फिर वैभव सामने आ गया था। उसका अतीत सामने खड़ा था।

स्वाति और वैभव बचपन से साथ पले-बढ़े थे। स्वाति एक संपन्न परिवार से थी और वैभव एक सामान्य शिक्षक के बेटे। उनके पिता श्यामराय जी और स्वाति के पिता ताराचंद जी में गहरी दोस्ती थी। वैभव का अक्सर स्वाति के घर आना-जाना होता था। यही दोस्ती धीरे-धीरे प्रेम में बदल गई।

पर वैभव हमेशा सावधान रहता था — वह जानता था कि उनके बीच हैसियत की खाई बहुत गहरी है। स्वाति उसकी बातों

को हमेशा मज़ाक में टाल देती, कहती, “मुझे तुम्हारे साथ रहना है, अमीरी-गरीबी से क्या फ़र्क पड़ता है?”
पर एक दिन अचानक स्वाति ने उसे मिलने बुलाया — आँखें रोई हुई थीं। वह बोली, “मेरी शादी की बातचीत चल रही है।
अगले हफ़्ते लड़के वाले देखने आ रहे हैं। मैं तुमसे अभी शादी करना चाहती हूँ — यहीं, इसी मंदिर में।”
वैभव हतप्रभ रह गया। उसने कहा, “मैं कल जवाब दूँगा...” पर अगली सुबह वह और उसका परिवार अचानक गायब हो गया।

आज बीस साल बाद ऑफिस में वैभव को देख कर स्वाति का दिल धड़क उठा। वह अब अपने पति तरुण की कंपनी में एक ब्रांच हेड थी, और वैभव एक नौकरी की तलाश में आया था।

स्वाति ने उसके इंटरव्यू का बहाना बनाकर सारी बातें जाननी चाहीं। वैभव ने संक्षेप में अपनी आपबीती सुनाई — बहन की शादी के बाद उसने दीपा नाम की लड़की से विवाह किया था। एक दुर्घटना में दीपा का मानसिक संतुलन बिगड़ गया और अब वह शहर के मानसिक अस्पताल में है।

वह बोला, “मैं जानता हूँ तुम मेरी मदद करना चाहोगी, पर मैं अपनी योग्यता से ही नौकरी चाहता हूँ। साथ ही, मैं चाहता हूँ कि तुम अपने पति को सब कुछ बता दो — ताकि मेरी वजह से तुम्हारे जीवन में कोई अशांति न आए।”

स्वाति हँस दी — “तुम आज भी वही वैभव हो।” और वैभव भी मुस्कुरा दिया। फिर दोनों ने मिलकर ज़िंदगी के उन टेढ़े-मेढ़े रास्तों को पार किया, जो कभी उनके बीच दीवार बन गए थे।

कुछ वर्षों बाद वैभव की पत्नी दीपा ठीक हो गई। जीवन अब सामान्य हो चला था।

- जे0 पी0 नारायण भारती C/o – अमित कुमार सिंह
सुरेश कॉलोनी , रविंद्र चौक (मातृमंदिर अपार्टमेंट के सामने) ,
हजारीबाग ,झारखंड, पिन –825301

कविता - ख्वाबों का दरीचा

ख्वाबों का दरीचा खुला आज फिर,
धूप झाँक रही थी, अधूरी हँसी के बीच से।
माथे पर समय का पसीना चमक रहा था,
और मन – जैसे टूटी खपरैल के नीचे बैठा बच्चा।

कहाँ गए वो सपने —
जो मैंने खेत की मेड़ों पर बोए थे?
हरियाली आई तो सही,
पर कटाई किसी और ने कर ली।

मैंने शहर में नौकरी ढूँढी,

तो ख्वाबों ने मुझसे पूछा —
"किसानी छोड़ आए हो क्या?
अब ज़मीन की गंध भूल गए हो क्या?"

सच कहूँ तो,
अब ख्वाब भी थक गए हैं मेरे साथ चलकर।
वो कहते हैं —
"तेरे सपनों की उम्र अब सरकारी फ़ाइलों में फँसी है।"

मैं हँस पड़ता हूँ —
बिलकुल बाबा 'शशि' की तरह,
एक करुण हँसी,
जो आँसू के पहले ठहर जाती है।

कभी सोचता हूँ,

ये ख्वाबों का दरीचा बंद कर दूँ,
पर फिर भीतर कोई कहता है —
"अरे मूर्ख!
इसी से तो तेरे भीतर अभी आदमी ज़िंदा है!"

तो आज फिर मैंने
उस दरीचे को खोला है धीरे से —
हवा आई,
थोड़ा धूल उड़ी,
थोड़ी उम्मीद भी।

और मैंने देखा —
मेरी माँ की आँखों में,
मेरे बेटे की मुस्कान में,
अब भी थोड़ा-सा सपना बाकी है...
थोड़ा-सा जीवन भी।
- शशि धर कुमार